उपसंहार

उपसंहार

मेरे ' लघु-शोध-प्रबन्ध ' का विषय हैं, ' कबीर के काव्य में अभिव्यक्त समाज-दर्शन ' । इस ' लघु-शोध-प्रबन्ध ' के पहले अध्याय में मैंने कवि कबीर की जीवनी का वर्णन किया हैं । इस विषय पर लिखते वक्त कवि कबीर की जीवनी संक्षेप में लिखना आवश्यक लगा । इसलिए मैंने अन्य अनेक उपलब्ध ग्रन्थों के सहारे उनकी जीवनी लिखने का प्रयास किया हैं ।

महात्मा कवि कबीर के जीवन-काल के संबंध में विद्वानों में बहुत मत-भेद हैं । इसका कारण उनके जीवन-काल के संबंध में सही ऐतिहासिक तिथि नहीं प्राप्त हो सकती । विविध किंवदन्तियों तथा हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर विद्वानों ने भिन्न-भिन्न निष्कर्ष निकाले हैं । अत: अंत:साक्ष्य और बहि:साक्ष्य के आधार पर कोई प्रामाणिक तिथि जो सब दृष्टि से सर्वमान्य हो, नहीं मिलती, तथापि अनेक मतों एवं उपलब्ध सामग्रियों का निरीक्षण करते हुए इसी बात को मानना पडा हैं कि कबीर का जीवन काल सं. १४५५ से १५७५ तक हैं ।

उनकी माता-पिता का निश्चित पता नहीं उपलब्ध होता, तथा जन्म-स्थल के बारे में भी विवाद हैं । उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय काशी में बिताया । उनकी जाति जुलाहे की थी । अपने स्पष्ट विचारों के कारण पर्याप्त

विरोध का सामना उन्हें करना पडा । उनका परिवार था। भक्ति में लीन रहने के कारण अपने गृहस्थ धर्म का निर्वाह करने मे उन्हें कठिनाई होती थी । सांसारिक होते हुए भी वे सांसारिक मोहजाल में लिप्त न थे । यद्यपि उन्होंने अपने गुरु संबंधी अत्यंत आदर प्रकट किया हैं, तब भी उनके गुरु के नाम के संबंध में निश्चित कुछ कहना कठिन हैं । तथापि बहुत से विद्वान स्वामी रामानन्द को उनके गुरु मानने के पक्ष में हैं । मृत्यु से पहले वे काशी को छोडकर मगहर गये, वहीं उनकी मृत्यु हुअी । उन्हें पर्याप्त लम्बी आयु प्राप्त-हुअी थी ।

मैंने दूसरे अध्याय में कबीर कालीन सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन किया हैं । कबीर का युग संघर्ष का युग था । संस्कृति ,धर्म, राजनीति ,अर्थकारण और सामाजिक बातों में बहुत बडे संघर्ष थे और इन संघर्षों में जो शक्तिशाली था वही विजयी होता था । धर्म और राजनीति में द्रुत गति से परिवर्तन हो रहे थे । धर्म और राजनीति जनता के दुख के कारण थे । समाज में असमानता के विविध रूप इन्हीं दोनों के पारस्परिक संघर्षों के परिणाम थे ।

समाज की स्थिति बडी शोचनीय थी । हिन्दू और मुसलमान इन दोनों समाजों की धार्मिक एवं व्यावहारिक सभी बातों में आडम्बर बढता जा रहा था । दोनों ही असत्य एवं मिथ्यात्व के पुजारी होते जा रहे थे । जिस के फल स्वरूप जाति तथा देश मे सर्वत्र अस्त-व्यस्तता और विशृंखलता फैली हुअी थी ।

तीसरा अध्याय कबीर-बाणी में प्राप्त समाज दर्शन में इस लघु-शोध-प्रबन्ध का नवनीत हैं जो निम्न मुद्दोंपर आधारित हैं --

(अ) कबीर का धर्माचरण संबंधी चित्रण -
विचार और आचरण - कर्मकाण्ड तथा बाह्याचार ।

(आ) नारी-भावना ।

(इ) गृहस्थ और संन्यास धर्म ।

(ई) अनिष्ट प्रथा और परम्पराओं की आलोचना ।

(अ) कबीर का धर्माचरण संबंधी चित्रण --

विचार और आचार, कर्मकाण्ड तथा बाह्याचार ।

कबीर कालीन समाज में धर्म प्रमुख था । लोग राजनीति, साहित्य, अर्थ, धर्म का अनुसरण करते थे । पर यह धर्म वास्तव में धर्म नहीं था, बल्कि यह कर्मकाण्ड एवं बाह्याचार था । उस समय धर्म के नाम पर मानव समाज में अनेक वर्ग बन गये थे । इन वर्गों में विद्वेषा के कारण संघर्ष था । पण्डितों-मुल्लाओं में धर्म एवं ईश्वर के नाम पर तीव्र मत भेद था साथ ही साथ दोनों के सामाजिक व्यवहार टूट गये थे । हिन्दू समाज में अनेक जातीय वर्ग बन गये थे । जिसके कारण जन-जीवन में छूत-अछूत का भाव था और उस भेद-भाव के कारण पूरे समाज में अनेकता थी । कबीर ने समाज के इस बाह्य और अंतरंग को देखा और आवश्यकतानुसार उसकी आलोचना की । वे स्वयं ऐसे समाज में रहकर भी जाति, धर्म तथा वर्गवाद से मुक्त थे । इन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित समस्त अंध विश्वासों, रूढ़ियों तथा मिथ्या सिध्दान्तों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओं का मूलोच्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्ममता पूर्वक सभी पाखण्डों पर प्रहार किया । कबीर ने तत्कालीन सामन्तों तथा शासकों को लक्ष्य कर ऐसी अनेक बातें कही हैं, जिनसे भौतिक ऐश्वर्यों पर आधारित उनके झूठे अभिमान का मूलोच्छेद हो ।

(आ) नारी-भावना ।

सारा समाज कनक और कामिनी में सुख खोज रहा था । इसलिए समाज में अत्याचार एवं भ्रष्टाचार था । समाज में विलासिता का प्रचार, शासकों की स्वच्छन्द और विलासी वृत्ति के कारण हुआ । परिणाम स्वरूप राजा से लेकर प्रजा तक विलासी वातावरण हो गया था । मनुष्य अपना गन्तव्य खो गया था । वह इन्द्रिय सुख के लिए प्यासा बन गया था । वासना की प्यास स्त्री-पुरुष दोनों में थी । जिस प्रकार समाज में व्यभिचार करनेवाली स्त्रियों को पति की तरफ से आदर नहीं मिलता था : उसी प्रकार जो पतिव्रता नारियाँ थीं, वे अपने पति को बहुत प्यारी

थीं । समाज में अपने पति के प्रति कुछ स्त्रियों का त्याग महान था । इसलिए समाज में सती-प्रथा का प्रचलन था । पति के मरने पर वे अपने को जला लेतीं ।

कबीर ने स्त्रियों के अच्छे और बुरे दोनों रूपों को देखा था । जिससे विकार जागृत होते हैं, चरित्र-गिरता है ऐसे स्त्री रूप को कबीर ने विषा कहा है और डाकिन ,कामिनी,सर्पिणी,पापिनि, मोहिनी आदि न जाने कितने तिरस्कार सूचक नाम दिए हैं । उसे माया रूपिणी मान कर उसकी भर्त्सना की है । इसी प्रकार स्त्री के सेवा-परता,पति-व्रता,सतीत्व आदि महान गुणों का मात्र आदर ही नहीं किया है, तो जैसे पति-व्रता अपना व्यक्तित्व अपने पति में घुलामिला देती है, उसी प्रकार की भगवत् भक्ति को अपनाया है । ऐसी पति-व्रता नारी का आदर्श जन-सामान्य के सम्मुख रखा ।

(इ) गृहस्थ और संन्यास धर्म --

कबीर की भक्ति वैराग्य मूलक है । उन्होंने प्रारंभ से ही सन्सार की नश्वरता समझा ली और इसी से त्याग और वैराग्य की बात को बार-बार उठाया है । परन्तु इस का यह अर्थ नहीं कि मनुष्य संसार त्यागी बन जाए, घर-गृहस्थी छोड दे, अपने मौलिक कर्तव्य छोड दे, और गृह त्यागी,संन्यासी बन जाए । कबीर के जीवन वृतान्त में ऐसा बहुत कुछ है, जो इस गृहत्याग की भावना का विरोध करता है । वे काम,क्रोध,लोकाचार और अहंकार को छोडने का उपदेश देते हैं । कर्मत्याग का उपदेश नहीं देते । वे जीवन पर्यन्त सत्कर्मी बने रहे । यदि मनुष्य अहंभाव छोडकर अपने ऐहिक कर्तव्यों को निभाता जाए तो यह कर्म-संन्यास ही है । उनका मत है कि वह भक्त सच्चा है, जो घर में और गृहस्थ धर्म का पालन करता हुआ साधना में तल्लीन रहता है ।

जहाँ कबीर के त्याग और वैराग्य की बात आयी है, वहाँ वस्तुत: विषाय त्याग की बात है । कबीरदास अकर्मण्यता को कबूल नहीं करते थे । उनका सिध्दान्त है कि व्यक्ति को शारीरिक श्रम करना चाहिए । वे कर्मशीलता के पक्षपाती रहे ।

शारीरिक श्रम द्वारा धनोपार्जन तो होता ही है, साथ ही साथ आत्मग्लानी भी नहीं होती । मनुष्य का चरित्र शुध्द रहना है, उसके स्वास्थ्य की वृध्दि होती है । जो व्यक्ति शारीरिक श्रम नहीं करते उनका मन व्यर्थ के कार्यों मे उलझा रहता है । उनका चरित्र गिर जाता है । मानसिक रोग हो जाते हैं और व्यक्ति का स्वास्थ्य तो नष्ट होता ही है आचरण भी नष्ट होता है । ऐसा व्यक्ति जीवन के आदर्शों का पालन करने में सफल नहीं होता ।

प्रपंचों से पृथक होकर, किस प्रकार रहकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है ? इस प्राप्ति के लिए कबीर ने वैयक्तिक जीवन मे आचारों की महत्ता निरूपित की है, वह इस प्रकार अहिंसा, सॉच,अस्तेय,ब्रह्मचर्य,शौच,सन्तोष, तपश्चर्या,धीरज, क्षमा,सत्संग ।

(ई) अनिष्ट प्रथा और परम्पराओं की आलोचना --

मध्य-युग के कुहासे मे कबीर के प्रगत मानवतावादी विचार आलोक की एक तीव्र स्वर्ण-रेखा जैसे हैं जिस से आज भी अंधविश्वासों में गुमराह भारतीय बहुत कुछ प्रकाश और मार्ग पा सकता है ।

कबीर युग के विविध मत मतान्तरों द्वारा प्रचलित विविध बाह्याडम्बरों के साथ ही अनेक धार्मिक अनिष्ट प्रथा, रूढि, परम्परा तथा लोक विश्वास सामान्यत: समस्त धार्मिक जीवन में प्रचलित थे । जिन की रूढता के कारण जनता उन्हें ही जीवन का सर्वस्व मान बैठी थी । ये आस्थाएँ तथा बाह्याचार अपने मूल रूप को छोडकर साधनागत विकृतियों के साधन बन गए थे । कबीर ने जो उनका विरोध किया उससे उनका युग प्रवर्तक व्यक्तित्व प्रकाश में आता है ।

कबीर ने गले-सडे हिन्दू मत की धज्जियाँ उडाई हैं, किन्तु यह भी अवश्य स्वीकार करना पडेगा कि तत्कालीन धार्मिक साधना में अत्यधिक आडम्बर और बाह्याचार के तत्व समाहित थे । कबीर ने देशकाल की दुर्बलताओं को समाज में

ताण्डव नृत्य करते देखकर क्षोभ व्यक्त किया है और समाज की दुर्बलताओं को बडी हेय दृष्टि से देखा है । पण्डित और काजी,अवधू और जोगी ,मुल्ला और मौलवी सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला उठते हैं । अत्यन्त सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि चोट खानेवाला केवल धूल झाड के चल देने के सिवा और कोई रास्ता ही नहीं पाता ।

कबीर ने समाज को बाहर और भीतर की आँखों से भली-भाँति देखा था । उन्होंने अपने चिन्तन-मनन से मनुष्य के क्रिया व्यापार को अच्छी तरह समझा था । इसीलिए उन्होंने हजारों वर्षों से आती हुअी परम्परा का तिरस्कार किया था ।उस परम्परागत आए हुए धर्म एवं पाण्डित्य पूर्ण शास्त्र में कोई मानव-जीवन के लिए उपयोगी तत्व नहीं था । इसलिए कबीर ने उसे कोई महत्व नहीं दिया । उन्होंने मानव धर्म का नए सिरे से चिन्तन किया और परम्परागत पाखण्ड-पूर्ण मान्यताओं का विरोध कर मनुष्य को सही राह पर चलने का निर्देश किया ।

चतुर्थ अध्याय में मैंने कबीर के काव्य में अभिव्यक्त समाज-दर्शन का महत्व विषाद किया है ।कबीर की सारी आस्था समाज के मनुष्य पर थी । उनका ईश्वर हर एक मनुष्य था । कबीर के मन में जिस आदर्श मानव की मूर्ति विराजमान थी, वह एक नैतिक,सात्विक ईश्वर भक्त के अतिरिक्त और कुछ न था । उनकी दृष्टि में आदर्श मानव को ईश्वर में विश्वास करनेवाला,सन्सार के आकर्षणों से विरक्त, समस्त भेद भाव से परे, सत्यनिष्ठ तथा मन,वाणी और कर्म में एक होना चाहिए । मन की विषयोन्मुखता आदर्श मानव के मार्ग की सब से बडी बाधा है । इसलिए उसे मन को नियंत्रित रखना चाहिए । आदर्श मानव को अहंकार रहित,तत्वदर्शी हंस की तरह नीरक्षीर विवेकी,चंदन की तरह शीतल और दुर्जनों को भी सज्जन बनानेवाला समत्व बुध्दि सम्पन्न होना चाहिए ।

कबीरदास ने जहाँ कहींढोंग,दिखावा, कपट,धोखा,फरेब, आडम्बर,स्वांग, प्रपंच,छल,छद्म देखा,वहीं निर्भय होकर प्रहार किया, पण्डित हो चाहे मौलवी,गुरु हो चाहे पीर, योगी हो चाहे फकीर, हिन्दू हो चाहे मुसलमान । यदि वह

सच्चाई के मार्ग से अलग हैं, तो कबीर ने उसको चेतावनी दी हैं । उनपर व्यंग्य और उपहास किया हैं । बाह्याचार की निरर्थक पूजा और संस्कारों को विचार हीन गुलामी कबीर को पसन्द नहीं । वे मुक्त मनुष्यता को ही प्रेम भक्ति का पात्र मानते थे । धर्मगत विशेषाताओं के प्रति सहनशीलता और संभ्रम का भाव भी उनके पदों में नहीं मिलता ।

कबीर ने जनता में अहिंसा, जीवन सुलभता आदि मानवीय गुणों का प्रचार किया । उन्होंने शुध्द भावों से अपने विचारों और सिध्दान्तों का प्रकाशन किया । उन्होंने सहज सात्विक जीवन पध्दति को ही महत्व दिया । वे सत्य के उपासक रहे । उनकी करनी और कथनी में कोई अन्तर नहीं आया ।

तात्पर्य कबीर के सामाजिक विचारों और कार्यों का महत्व यह हैं कि उन्होंने व्यावहारिक स्तर पर एक अलग समाज की स्थापना की, जो परम्परागत मान्यताओं से भिन्न था । कबीर का यह व्यवहार मनुष्य का नैतिक कर्म था । प्रत्यक्ष जीवन - दर्शन था । उन्होंने मानव को समाज का प्रमुख घटक माना था । उनके अनुसार मनुष्य की सेवा और मनुष्य के साथ सद् व्यवहार मनुष्य की भक्ति हैं । वस्तुत: उनकी भक्ति का उद्देश्य मनुष्य के सद्गुणों को उभारना हैं । जिससे मानव समाज का विकास और कल्याण होता हैं । मानव-मंगल ही मानवता की सब से बडी उपलब्धि हैं । कबीर के काव्य में यही तो हैं, इसीसे कबीर के काव्य का महत्व अजर, अमर और अक्षुण्ण हैं । कबीर का काव्य काल की कसौटी पर कुंदन साबित हुआ हैं ।